अंक–3 जून 2016, दिसंबर, 2016 ISSN:2321-4465 मूल्य: ₹ 50

1990

सिग्निफ़ायर ऑफ़ चेंज

(बदलाव का संकेतक)

साहित्य, संस्कृति और शोध की पत्रिका

अतिथि संपादक
मनहर चारण

विशेषांकः लोकतंत्र में मूल्य, शांति और शिक्षा

Scanned by CamScanner

शांति शिक्षा की व्यावहारिकता
डी.एन. प्रसाद
मूल्य आधारित शिक्षा 113
कन्हैया त्रिपाठी
लोकतंत्र के विकास में शांति और शिक्षा 117
भगीरथ प्रसाद 'वैष्णव', बिन्दु खण्डेलवाल,
प्रसाद की "कामायनी" में शान्ति और समरसता 124
डा. कल्पना मौर्य,
हमने अपनों को राजपाट करने का अवसर दिया है 127
डॉ. ममता पारीक,
शांति शिक्षा के बदलते आयाम 131
विकास शर्मा, रविन्द्र सिह
टेलीविजन धारावाहिक 'मैला आंचल' 133
में राजनीतिक युग चेतना और उसकी संप्रेषणीयता
उमेश कुमार पाठक,
केन्द्रीय उच्च माध्यमिक विद्यालय 141
तथा राजकीय इण्टर कॉलेज के उच्चतर माध्यमिक
स्तर के विद्यार्थियों में मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन
श्रवण कुमार शुक्ल
डॉ. अजय कुमार सिंह 147
लोकतंत्र में मूल्य और शांति शिक्षा
सतेन्द्र कुमार 153
शिक्षा द्वारा मूल्यों के विकास की प्राथमिकता तय हो
कुमारेन्द्र सिंह सेंगर 157
लोकतन्त्र में मूल्य व शान्ति शिक्षा
डॉ. सुरेश शर्मा
उषा शर्मा 161
भारतीय संस्कृति में मानव –मूल्य
संजय कुमार 165
लोकतन्त्र में स्वदेशी शिक्षा और शान्ति
रामावतार 170
मिताचार एक नैतिक मूल्य : अरस्तु के संदर्भ में
राहुल मनहर 174
शान्ति की शिक्षा से सामाजिक–समरसता का शंखनाद
जितेन्द्र कुमार लोढ़ा 178

Scanned by CamScanner

शांति शिक्षा के बदलते आयाम

विकास शर्मा, रविन्द्र सिह

असिस्टेंट प्रोफेसर,
जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनू

भारत में प्रजातन्त्र और शिक्षा के परस्पर सम्बन्ध की विवेचना उस समय तक पूर्ण तक नहीं कही जा सकती जब तक कि प्रजातन्त्रीय या लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की संस्थाओं के अन्तर्गत प्रदान की जा रही है शिक्षा–व्यवस्था का भी विश्लेषण नहीं किया जाता। किसी राष्ट्र के पुनः निर्माण के लिए शिक्षा सर्वोत्तम साधन है। शिक्षा व्यक्ति को केवल ज्ञान ही नहीं देती है बल्कि उसका निर्माण भी करती है। व्यक्तियों के निर्माण से ही राष्ट्र का निर्माण होता है।[1] आज हम विज्ञान और तकनीकी के युग मे जी रहे है हमने विज्ञान और तकनीकी के अन्तर्गत अभूतपूर्व प्रगति की है।[2]

शिक्षा

मानव–जीवन में शिक्षा की भूमिका बड़ी महत्वपूर्ण है। जन्म से बालक पशुवत् आचरण करता रहता है। उसके व्यवहार में सौन्दर्य लाने का कार्य शिक्षा करती है। शिक्षा के ही द्वारा समाज अपनी संसति की रक्षा करता है और सभ्यता के रथ को आगे बढ़ाता है। जीवन की उदात्तता, उच्चता, सौन्दर्य एवं उत्ष्टता शिक्षा द्वारा सम्भव है। शिक्षा व्यक्ति के जीवन में आरम्भ से अन्त तक चलने वाली प्रक्रिया मानी जाती है, यही कारण है कि इसे अवतरण प्रक्रिया भी कहा जाता है, जो सदैव चलती रहती है।[3] बालक की वैयक्तिक प्रगति, उसका शारीरिक, मानसिक और भावात्मक विकास तब तक भली प्रकार नहीं हो पाता जब तक वह शिक्षा न ग्रहण करे। समाज में सुख–समृद्धि लाने का कार्य भी शिक्षा ही करती है। बाल केन्द्रित शिक्षा किसी भी समाज और परिवार की एक महत्वपूर्ण कड़ी होती है यह कहते हुए हमने सुना है कि आज के बालक ही हमारे समाज के भविष्य है।[4]

शिक्षा का अर्थ

शिक्षा शब्द संस्त की 'शिक्ष्' धातु से बना है जिसका अर्थ है सीखना और सिखाना। शिक्षण शब्द अब अध्यापन (टीचिंग) के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा है किन्तु अपने मूल अर्थ में यह सीखना और सिखाना (लर्निंग एण्ड टीचिंग) दोनों है। शिक्षा शब्द में भी दोनों भाव निहित हैं। सीखने के अर्थ में प्रायः शिक्षा प्राप्त करना और सिखाने के अर्थ में शिक्षा प्रदान करना पदबन्ध प्रयुक्त होते हैं।

शिक्षा का अंग्रेजी प्रयोग 'एजुकेशन' लैटिन भाषा के एजुकेटम या एजुकेयर से निकला है। पहले इसकी व्युत्पत्ति एजुकेटम से ही मानी जाती थी। एजुकेटम में दो शब्द हैं 'ए' और 'डूको'। 'ए' का अर्थ है अन्दर से और 'डूको' का अर्थ है बाहर लाना। इस नई विचारधार के अनुसार यह 'एजुकेयर' से निकला

Scanned by CamScanner

है जिसको अर्थ है पालन–पोषण करना, संवर्द्धन करन या पथ–प्रदर्शन करना। दूसरी व्युत्पति अब शिक्षाशास्त्र में अधिक मान्य है। परिवर्तित परिवेश के साथ शिक्षा क्षेत्र में भी परिवर्तन आ रहे है। विद्यार्थियों की शारीरिक मानसिक तथा भावनात्मक प्रगति के अवरोधको अनेक कारणों की खोज एवं निदान, निर्देशन सेवाओं द्वारा ही सम्भव है।[5]

हिन्दी और अंग्रेजी–दोनों व्युत्पतियों के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा बालक की जन्मजात शक्तियाँ का विकास किया जाता है। बालक के मस्तिष्क में ज्ञान को ठूँसना अब इसका अर्थ नहीं स्वीकार किया जाता।

शिक्षा की परिभाषाएँ

शिक्षा के ऊपर विभिन्न विद्वानों ने भिन्न–भिन्न प्रकार से विचार किया है। कुछ परिभाषाओं पर यहाँ दृष्टिपात कर लेना समीचीन होगा–

1. मानव द्वारा प्रति, अपने साथियों व विश्व की चरम सत्ता के साथ सामंजस्य स्थापित करना ही शिक्षा है।

   –एच0 एच0 हार्न

2. शिक्षा से मेरा अभिप्राय उस प्रशिक्षण से है जो अच्छी आदतों के द्वारा बच्चों में अच्छी नैतिकता का विकास करती है।

   –प्लेटो

3. स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क की रचना ही शिक्षा है।

   –अरस्तु

4. व्यक्ति की उस पूर्णता का विकास, जिस पर वह पहुँच सकता है शिक्षा कही जाती है।

   –काण्ट

5. व्यक्ति के अन्दर निहित पूर्णत का उद्घाटन ही शिक्षा है।

   –स्वामी विवेकान्द

6. शिक्षा से मेरा तात्पर्य उस प्रक्रिया से है बालक एवं मनुष्य के शरीर, मन एवं आत्मा के सर्वोत्ष्ट रूपों को प्रस्फुटित कर दे।

   –महात्मा गाँधी

उपर्युक्त परिभाषाओं को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि शिक्षा एक प्रक्रिया है न कि उपलब्धि। उपलब्धि तो इस प्रक्रिया का परिणाम है। इस प्रक्रिया में बालक के सर्वांगीण विकास का भाव निहित है। महात्मा गांधी की दी हुई परिभाषा बालक के सर्वांगीण विकास पर बल देती है। स्वामी विवेकानन्द ने पूर्णता के विकास की बात की है। इस परिभाषा से यही ध्वनि निकलती है कि बालक के ऊपर बाहरी ज्ञान को थोपना नहीं है। अरस्तू की परिभाषा एकांगी है। काण्ट ने भी पूर्णता का ध्यान रखा है। प्लेटो ने प्रशिक्षण पर बल दिया है, तो हार्न ने सामंजस्य पर। शिक्षा के परिवेश में परिष्टित मनोविज्ञान शिक्षामय हो गया है। शिक्षा मनोविज्ञान का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है।[6]

शिक्षा प्रक्रिया की विशेषताएँ

शिक्षा की प्रक्रिया की अपनी कुछ विशेषताएँ है जिनका विहंगावलोकन कर लेने पर इसके अर्थ को भली प्रकार समझा जा सकता है। ये विशेषताएँ निम्नलिखित है–

1. शिक्षा एक त्रिभुजी प्रक्रिया है। एडम ने इसे द्विभुजी प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया था किन्तु जान डीवी के अनुसार यह त्रिभुजी है। इसके तीन घ्रुव है (अ) अध्यापक, (ब) शिक्षार्थी, और (स) पाठ्यक्रम
2. शिक्षा एक लगातार चलने वाली प्रक्रिया है। यह जन्म से मृत्युपर्यन्त अबाध गति से चलती रहती है।
3. शिक्षा संकुचित और व्यापक, दोनो रूपों मे होती है। संकुचित रूप में यह कक्षा के अन्दर सीखी जाने वाली प्रक्रिया है तो व्यापक रूप में यह मात्रा, भ्रमण, बारात, कक्षा, विद्यालय, क्रीडांगन आदि सभी स्थानों पर प्राप्त होने वाला अनुभव है। व्यापक अर्थ में यह जीवन के साथ चलने वाली प्रक्रिया है।
4. यह एक गतिशील प्रक्रिया है। स्थिरता की स्थिति में शिक्षा की प्रक्रिया समाप्त हो जाती है। जीवन में गति है अतः जीवन–भर शिक्षा चलती है। मृत्यु अगति का द्योतक है तो शिक्षा की समाप्ति का भी द्योतक है।[7]

प्रजातन्त्रीय विकेन्द्रीकरण की पृष्ठभूमि :

स्वातन्त्र्योत्तर भारत के संविधान की चालीसवीं धारा में राज्य के लिए यह आवश्यक ठहराया गया था कि वह ग्राम–पंचायत को संगठित करे तथा उन्हें ऐसी शक्तियों व अधिकारों से सम्पन्न बनाये जो उन्हें स्वशासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने में समर्थ बनाएँ।

इस संवैधानिक आवश्यकता की पूर्ति के लिये भारत सरकार ने सभी राज्य सरकारों को प्रेरणा व सहायता देकर 02 अक्टूबर, 1952 से सामुदायिक विकास खण्ड देशभर में खोले थे। शनैः शनैः इनकी संख्या में विस्तार हुआ और ये लगभग ढाई हजार की संख्या तक पहुँच पाये। यद्यपि इन विकास–खण्डों में किये गये लोक–कल्याण व विकास के विविध

Scanned by CamScanner

कार्यक्रमों से जनता को पर्याप्त लाभ हुआ और कई विदेशी विशेषज्ञ भी इनसे प्रभावित हुए बिना न रह सके, तथापि कई प्रेक्षकों व अध्ययनकर्त्ताओं के विचार से उनकी प्रभावोत्पादकता सीमित ही थी। भारत सरकार ने इस कार्यक्रम की सफलता का मूल्यांकन करने के लिये लोकसभा के सदस्य श्री बलवन्तराय मेहता की अध्यक्षता में एक मूल्यांकन समिति बनाई गई थी। 1956 में इस समिति ने अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया था। जिसमें सामुदायिक विकास–कार्यक्रमों व राष्ट्रीय खण्ड विस्तार योजना खण्डो के कार्यों का समुचित मूल्यांकन किया गया था। उसने उनके दोषों व कमियों का निराकरण करने के लिये कई महत्वपूर्ण सुझाव दिये थे। प्रतिवेदन में यह कहा गया था – जनता में प्रचलित यह सामान्य धारणा सत्य थी कि विकास कार्यक्रमों में इच्छित सीमा तक लाभ नहीं पहुंच सका था। सरकारी कर्मचारियों पर ही विकास–कार्यों का सारा उत्तरदायित्व छोड़ दिये जाने के फलस्वरूप कई प्रकार की धांधलियाँ हो रहीं थी। राज्यों में विकास–आयुक्त (डवलपमेंट कमिश्नर) अपने–अपने राज्यों की राजधानी के कार्यालयों में बैठे–बैठे ही राज्यभर के ग्रामों की आवश्यकताओं के विषय में अपना अनुमान लगा लेते थे तथा अपनी इच्छानुसार उनके विकास के लिये अनुदान का वितरण करते थे। स्थानीय निवासियों की आवश्यकताओं व कठिनाइयों का सही अनुमान उन्हें नहीं हो पाता था। सरकारी कर्मचारी विकास–कार्यों की योजनाओं का निर्माण करते समय तो ग्रामों की स्थानीय जनता से कोई सम्मति व सहायता नहीं लेते थे और अपनी इच्छानुसार या किसी प्रकार के राजनीतिक या प्रशासनिक दबाव से प्रभावित होकर कार्य करते थे, लेकिन जब उनकी योजनाएँ सुचारू रूप से कार्यान्वित नहीं हो पाती थी तो ये कर्मचारी स्थानीय जनता से सहयोग की मांग करते थे, जिसे ऐसी स्थितियों में प्राप्त करना कठिन होता था। यही कारण था कि वर्षों तक विशाल धन–राशि व्यय करने पर भी हजारों ग्रामों में कोई महत्त्वपूर्ण सामाजिक परिवर्तन नहीं हुआ था। प्रायः विकास कार्यों के संचालन में शिथिलताएँ, देरी, उत्साहहीनता की प्रवृत्तियाँ ही प्रमुख रहीं थीं, जिनके फलस्वरूप ये विकास योजनाएँ 'अफसरों की योजनाऐं' ही बनी रहीं, 'जनता की योजनाऐं; न बन सकीं।

अतः बलवन्तराय मेहता समिति ने इस पक्ष पर बहुत अधिक बल दिया था कि जनसहयोग–प्राप्ति के लिये स्थानीय विकास कार्यों के प्रशासन, आयोजन, निरीक्षण का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व स्थानीय–संस्थाओं को ही सौंपा जाना चाहिए। समिति ने विकास कार्यों के प्रशासन का विकेन्द्रीकरण करने का सुझाव दिया था। उसके अनुसार तीन स्तरों की अथवा त्रिचक्रीय व्यवस्था का निर्माण किया जाना चाहिए–ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत हो, विकास–खण्ड स्तर पर पंचायत समिति हो तथा जिला–स्तर पर जिला–परिषद् हो। ग्राम पंचायत का मुखिया, जिसे सरपंच कहा जाए, पंचायत के सदस्यों की सहायता से अपने ग्राम की विकास सम्बन्धी समस्याओं में प्राथमिकता निर्धारित करें, विकास–कार्यों के लिए धन प्राप्त करने का प्रयास करें व उन्हें पूर्ण करवाये। पंचायत समिति का प्रधान पंचायत समिति के सदस्यों (जो कि ग्राम पंचायतों के सरपंच हों) की सहायता से अपने खण्ड की सभी ग्राम–पंचायतों के द्वारा किये गये विकास कार्यों का मार्गदर्शन करें व उन्हें आर्थिक सहायता दे। जिला–परिषद् के मुखिया 'जिला प्रमुख' का कार्य जिला–परिषद् के सदस्यों (अर्थात् पंचायत समितियों के प्रधानों) की सहायता से जिलेभर की पंचायत समितियों की विकास–योजनाओं के लिये सरकारी अनुदान का उचित वितरण करना तथा उनमें उचित सामंजस्य स्थापित करना हो। इससे यह आशा की गई थी की स्थानीय जनता को प्रशासन से पृथक्करण का अनुभव नहीं हो पायेगा।

समिति के इस सुझाव को केन्द्रीय तथा राज्य सरकार ने अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना तथा इस पर बहुत विचार–विमर्श हुआ। सर्वप्रथम राजस्थान राज्य ने इस योजना को राजस्थान में लागू करने का निश्चय किया। गाँधीजी की जन्म तिथि 2 अक्टूबर, 1957 को प्रधानमन्त्री पण्डित जवहरलाल नेहरू ने नागौर कस्बे में एक विशाल दीप की ज्योति को प्रज्वलित कर राजस्थान के लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण योजना का औपचारिक रूप से उद्घाटन किया था। अपने उद्घाटन भाषण में पंडित नेहरू ने कहा था – ''आपने इस कार्य को शुरू किया है, एक जनतन्त्र को फैलाया है यहाँ, पंचायत राज्य या जो कुछ भी आप कहें। .... यहाँ राजस्थान में जो एक मायने में भारत का हृदय है, एक–एक जिले और एक–एक गाँव से आकर लोगों ने निश्चय किया है कि लोकतन्त्र के भार को खुद उठाऐंगे। यहाँ की सरकार ने कानून बनाकर जनता के ऊपर यह जिम्मेदारी दी है। वह एक बड़ा काम है, ऐतिहासिक काम है।'' सचमुच यह महान् कार्य था। राजस्थान में 232 पंचायत समितियों और 26 जिला–परिषदों का निर्माण किया गया तथा ग्रामों के विकास कार्य उन्हें सौपे गये। राजस्थान के बाद आन्ध्रप्रदेश ने जनवरी, 1960 में इस योजना को लागू

Scanned by CamScanner

किया। धीरे–धीरे अन्य कई राज्यों (सिवाय जम्मू–कश्मीर, केरल, मध्यप्रदेश, मैसूर, नागालैण्ड, पंजाब, हरियाणा व हिमाचलप्रदेश) में भी पंचायत समितियों और जिला–परिषदों का निर्माण हुआ। शेष राज्यों में कुछ पंचायती राज्य को सैद्धान्तिक रूप से तो स्वीकार किया, लेकिन प्राथमिक शिक्षा को उसके अधीन नहीं रखा।

लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण और शिक्षा :

लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की योजना को लागू करते समय राजस्थान सरकार ने अपनी सभी जिला–परिषदों, पंचायत समितियों तथा ग्राम–पंचायतों को यह सूचित कर दिया था कि इनमें से किस–किस संस्था को क्या–क्या विकास कार्य करने के अधिकार व कर्त्तव्य होंगे। सरकार द्वारा पंचायत समिति को शिक्षा के क्षेत्र में निम्नांकित अधिकार प्रदान किये गये थे –

(क) सभी प्राथमिक पाठशालाओं (मय अनुसूचित आदिम जातियों के लिए चलाई गई पाठशालाओं) की व्यवस्था करना।

(ख) प्राथमिक पाठशालाओं को बुनियादी शिक्षा की पाठशालाओं के रूप में परिवर्तित करना।

(ग) माध्यमिक स्तर एक छात्र–वृत्तियों व अन्य भत्ते (अनुसूचित जातियों व जनजातियों के छात्रों को छात्र–वृत्तियों व भत्ते) प्रदान करना।

(घ) सूचना, मनोरंजन व सामुदायिक कार्यों के केन्द्र स्थापित करना।

(च) ग्रामीण पुस्तकालयों व वाचनालयों की स्थापना करना।

(छ) समाज शिक्षा की क्रियाओं, जैसे बाल–मंडलों, युवक–मंडलों आदि की स्थापना करना।

महाराष्ट्र ने विद्यार्थियों को ऋण देने, निजी माध्यमिक शिक्षा–संस्थाओं को अनुदानों व ऋण–प्राप्ति के लिए राज्य सरकार ने उनकी सिफारिश करने व पाठशालाओं के लिए साधन–सामग्री व खेल के मैदान प्रदान करने का उत्तरदायित्व भी जिला–परिषदों को सौंपा गया है। आन्ध्रप्रदेश में प्राथमिक शालाओं को जिला परिषदों को सौंपा गया है। आन्ध्रप्रदेश में प्राथमिक शालाओं को पंचायत–समितियों के अधीन तथा माध्यमिक स्तर तक की शिक्षा रखी गई है। अन्य राज्यों में भी न्यूनाधिक रूप से लगभग ऐसी ही व्यवस्था रखी गई।

प्रशासनिक व्यवस्थाएँ :

लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण के अन्तर्गत कार्य कर रही संस्थाओं द्वारा शिक्षा को चलाने के लिए जो प्रशासनिक व्यवस्था बनाई गई, उसकी मूल विशेषताएँ इस प्रकार रही है :

1. पाठशालाओं के लिए शिक्षक नियुक्त करने के लिए चुनने, शिक्षको के विरूद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही करने तथा विभिन्न पंचायत समितियों को उनकी आवश्यकताओं के अनुसार शिक्षक देने का कार्य, राजस्थान व अन्य कुछ राज्यों में जिला समिति को सौंपा गया।

2. पंचायत समिति कई स्थायी समितियों की सहायता से कार्य कर सके, इसकी व्यवस्था की गयी।

3. शिक्षा–सम्बन्धी विकास कार्यों के लिए धन देने की व्यवस्थाएँ राज्यों में अलग–अलग है। राजस्थान में शिक्षकों के वेतन तथा भत्तों को शत–प्रतिशत तथा अन्य व्ययों को पचास प्रतिशत के परिमाण में राज्य सरकार की ओर से दिया जाता है। गुजरात, आन्ध्रप्रदेश में प्राथमिक शिक्षा पर व्यय की जाने वाली धनराशि का घाटा राज्य सरकारें पूरा करती हैं, अर्थात् जितना धन लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की संस्थाएँ शिक्षा पर व्यय करती हैं उससे स्थानीय रूप से संग्रहित धन को घटा कर शेष धनराशि सरकार द्वारा दी जाती है। मद्रास में कई कारकों को ध्यान में रखकर अनुदान दिया जाता है।

4. राजस्थान में विकास अधिकारी पंचायत समिति का मुख्य प्रशासनिक अधिकारी होता है। यह राज्य कर्मचारी होता है। वह शिक्षा–प्रसार अधिकारियों की सहायता से शिक्षा–सम्बन्धी कार्यों की देखभाल करता है। विकास अधिकारी व शिक्षा–प्रसार अधिकारी सरकारी कर्मचारी होते हैं जिनकी सेवाएँ पंचायत समितियों को ऋण पर दी जाती हैं। शिक्षा–प्रसार अधिकारी प्रशिक्षित ग्रेजुएट शिक्षक की योग्यताएँ रखते है। प्रशासनिक रूप से वे विकास अधिकारियों के अधीन होते है लेकिन तकनीकी रूप से वे विकास अधिकारियों के अधीन होते हैं लेकिन तकनीकी रूप से वे जिला शिक्षा निरीक्षकों के अधीन माने जाते हैं। इस प्रकार उनको दोहरी पारस्परिक सम्बन्ध व्यवस्था अपनानी होती है। आन्ध्रप्रदेश में समिति के शिक्षा निरीक्षक पूर्णतया विकास अधिकारी के अधीन होते हैं तथा जिला–परिषद् को राज्य सरकार की ओर से एक द्वितीय श्रेणी का कर्मचारी माध्यमिक शिक्षा व्यवस्था का संालन करने के लिए दिया जाता है। गुजरात में जिला व तालुका स्तरों पर स्वतन्त्र शिक्षा–समितियाँ होती हैं तथा उनके व पंचायतीराज व्यवस्था के बीच बहुत कम सक्रिय सम्बन्ध होता है। मद्रास में पहले के समाज शिक्षा–अधिकारी प्राथमिक शालाओं के

Scanned by CamScanner

प्रशासनिक अधिकारी बनाये गये हैं।

5. राजस्थान के पहले शिक्षक राज्य सरकार के कर्मचारी थे, बाद में उनको पंचायतों के अधीन स्थानांतरित किया गया। उत्तरप्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, मद्रास आदि में वे पहले जिला बोर्डो के अधीन थे, उनको बाद में पंचायतीराज के अधीन स्थानांतरित किया गया था। राजस्थान के शिक्षकों को राज्य सरकार के शिक्षकों के समान वेतन व भत्ते मिलते हैं व पहलें शिक्षकों को राज्य शिक्षा–विभाग में पुनः चले जाने का अधिकार है, यद्यपि वे ऐसा बहुत कठिनाई से ही कर पाते हैं। आन्ध्रप्रदेश में जिला स्तर पर पंचायत समितियों के प्रधान ही शिक्षकों का चुनाव करते हैं। गुजरात में शिक्षकों की नियुक्ति, स्थानांतरण, दण्ड आदि के अधिकार जिला शिक्षा–समिति को है, जबकि महाराष्ट्र में ये अधिकार जिला परिषदों को मिले हुए है। उड़ीसा में राजस्थान की भाँति ही शिक्षकों की नियुक्ति विकास अधिकारी द्वारा की जाती है, लेकिन वहां पंचायत समिति के प्रधान को उप–शिक्षा निरीक्षक की सम्मति से एक शिक्षक को एक खण्ड से दूसरे खण्ड में स्थानांतरित करने का अधिकार है।[8]

आशाओं और निराशाओं का लेखा–जोखा :

(क) आकांक्षाएँ :

लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण के अन्तर्गत प्राथमिक व माध्यमिक स्तरों की शिक्षा–व्यवस्था को देते समय निम्नांकित आशाएँ की जाती थीं –

1. पाठशालाओं का समय–समय पर पंचायतों, पंचायत–समितियों व जिलापरिषदों के सदस्यों द्वारा निरीक्षण करेगा जिससे उनमें शैक्षणिक सुधार होगा।
2. पाठशालाओं के भवन–निर्माण सम्बन्धी कार्य अब पहले की अपेक्षा अधिक सुगमता व कुशलता से सम्पन्न हों पायेंगे।
3. ग्रामीणों में अपने ग्राम व कस्बे की शिक्षा–संस्थाओं के कार्यों के प्रति निरन्तर जिज्ञासा रखने व सहयोग प्रदान करने की प्रवृत्ति बनी रहेगी तथा वे शालाओं के उत्थान में सक्रिय योगदान कर सकेंगे।
4. पाठशालाएँ ग्रामीण समाज में सामाजिक चेतना तथा सामाजिक परिवर्तन को प्रसारित करने का महत्त्वपूर्ण केन्द्र बन सकेगी।
5. शिक्षकों को शिक्षा–विभागों की नौकरशाही की जटिल, स्तरीत, शोषणपूर्ण व हतोत्साही व्यवस्था से छुटकारा मिलेगा तथा यथासम्भव अपने ही ग्राम या खण्ड में स्थानांतरित या नियुक्त किये जाने से वे पूर्ण सन्तुष्ट होकर कार्य करेंगे।
6. विद्यार्थियों को पहले की अपेक्षा अधिक संख्या में पाठशालाओं में पढ़ने आने को प्रेरित किया जा सकेगा।
7. प्राथमिक शालाएँ, जोकि वर्षों से भारतीय शिक्षा–व्यवस्था की सबसे पिछड़ी हुई व लडखड़ाती हुई स्थिति में रही हैं, प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण के फलस्वरूप सशक्त व प्रभावपूर्ण बनेंगी और उनमें शिक्षा–सुविधाओं का सम्यक् विकास होगा। उनमें प्रदान की जाने वाली शिक्षा का स्तर ऊँचा उठेगा व ग्रामों में ज्ञान का उत्तम रूप से प्रसार होगा।

(ख) उपलब्धियाँ

1. राजस्थान व अन्य राज्यों में हुए कई सर्वेक्षणों से ज्ञात हुआ है कि जब से, शिक्षा को प्रजातन्त्रीय विकेन्द्रीकरण के अधीन किया गया है, पाठशालाओं में विद्यार्थियों के प्रवेश की संख्या में निस्संदेह बहुत अधिक वृद्धि हुई है। राजस्थान की सिमालवाडा पंचायत–समिति ने तो 1959 और 1965 की अवधि में 94 प्रतिशत वृद्धि प्राप्त की थी। पंचायत–समितियों तथा पंचायतों द्वारा 'शाला चलो' अभियानों के चलाये जाने से तथा विकास अधिकारियों व शिक्षा–प्रसार अधिकारियों के व्यक्तिगत रूप से विशेष उत्साह दिखलाने के फलस्वरूप विद्यार्थियों की संख्या बढ़ी है। ग्रामीण जनता भी अपनी सन्तानों को शिक्षित कराने की दिशा में सजग हुई है।
2. अब शिक्षक पहले की अपेक्षा कहीं अधिक सीमा तक नियमित रूप से अपनी शाला में पहुँचते हैं।
3. शिक्षकों को अब जिला कार्यालयों के स्थान पर पंचायत–समिति के कार्यालयों से वेतन मिलने लगा है। अतः वे उसे समय पर तथा नियमित रूप से पा सकते हैं।
4. ग्रामीण जनता में शालाओं, समाज शिक्षा केन्द्रों व पाठशाला द्वारा ग्राम में किये जाने वाले क्रिया–कलापों आदि के फलस्वरूप सामाजिक चेतना, शिक्षा के प्रति जागरूकता व नये मूल्यों को ग्रहण करने की प्रवृत्ति बढ़ने लगी है।
5. ग्रामों में नया नेतृत्व विकसित होने लगा है।
6. ग्रामीण पाठशालाओं के लिए पक्के भवनों के निर्माण का कार्य तेजी से हुआ है तथा पाठशालाओं की साधन–सामग्रियों की मात्राओं में भी पर्याप्त वृद्धि हो पायी है। स्वास्थ्य शिक्षा का सम्बन्ध उन सब बातों से है, जो किसी

Scanned by CamScanner

व्यक्ति को उसके अपने स्वास्थ्य सम्बन्धी आदतो मे मदद देकर उसको अच्छे स्वास्थ के बारे में शिक्षा देती है।[9]

जहाँ एक ओर ये सफलताएँ प्राप्त हुई हैं, वहाँ दूसरी ओर अनेक विफलताएँ और निराशाएँ भी मिली हैं।

(ग) विफलताएँ और निराशाएँ :

प्रस्तुत लेखक के निर्देशन में अलवर जिले की एक पंचायत समिति ने 1963–64 में एक शिक्षा–प्रसार अधिकारी द्वारा सम्पन्न किये गये समाजशास्त्रीय सर्वेक्षण से यह ज्ञात हुआ था कि :

1. लगभग आधे से अधिक शिक्षक अन्य गाँवों के रहने वाले थे।
2. लगभग 47 प्रतिशत शिक्षक प्रतिदिन पढ़ाने के लिए बाहर से आते थे व शाम को वापस अपने गाँव लौट जाते थे।
3. लगभग आधे शिक्षकों को उचित वेतन श्रृंखलाएँ नहीं मिली हुई थीं, कई प्रशिक्षित शिक्षकों को अप्रशिक्षित शिक्षक का वेतन मिल रहा था।
4. लगभग 25 प्रतिशत शिक्षक, पंचों, सरपंचों व पंचायत–समिति के अधिकारियों के बार–बार के हस्तक्षेप से क्षुब्ध थे।
5. लगभग सभी शिक्षक, प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम को उनके द्वारा जबरन कारवाई गई बेगार मानते थे, क्योंकि उन्हें इसके लिए कोई अतिरिक्त पारिश्रमिक नहीं मिलता था।
6. लगभग आधे शिक्षकों को उचित मकान रहने को नहीं मिल पाये थे।
7. लगभग एक–तिहाई शिक्षक सरकारी सेवा में पुनः स्थानांतरित किये जाने के लिए तड़फ रहे थे।
8. केवल 6 प्रतिशत शिक्षकों का ध्यान शिक्षण–सामग्री की कमी और शिक्षण सम्बन्धी अन्य कठिनाईयों की ओर गया था। स्पष्ट है कि किसी भी शिक्षक ने प्रस्तकालय, उद्योगशाला, बगीचे, शाला के शैक्षणिक व सामाजिक वातावरण के कार्यक्रमों में जनसहयोग की कमी की ओर संकेत नहीं किया था, क्योंकि वे व्यक्तिगत समस्याओं यथा मकान, पानी, वेतन, पारस्परिक झगड़ों आदि में ही अत्यधिक उलझे हुए थे।

उक्त अध्ययन को सम्पन्न करते हुए आज कई वर्ष हो गये है, लेकिन अभी भी राज्य की कई पंचायतों के अधीन कर्य कर रही प्राज्ञिकि पाठशालाओं के शिक्षकों में इन्हीं कठिनाइयों के फलस्वरूप बहुत असतन्तोष देखने में आता है।

राजस्थान के सुप्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री डॉ. एल. के.ओड के द्वारा किये गये राजस्थान की प्रजातंत्रीय विकेन्द्रीकरण की संस्थाओं के अधीन कार्य कर रही पाठशालाओं की कठिनाइयों से सम्बन्धित एक शोध अध्ययन के निम्नांकित चार महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकले है :

1. अब तक पंचायतीराज के विभिन्न अंगों के कार्यों के विषय में कई भ्रांतियाँ फैली हुई है। उदाहरणार्थ, शिक्षा, विस्तार अधिकारी व समाज शिक्षा अधिकारी के उत्तरदायित्व की स्पष्ट व्याख्या अब तक नहीं हुई है। यह स्पष्ट नहीं होता कि क्या इनसे शैक्षिक निरीक्षण व मार्गदर्शन कार्य करने की अपेक्षा की जाती है या केवलमात्र बाबूगिरी करने के लिए है।

2. अध्यापकों के ऊपर अफसरी रकने वाले अधिकारियों की संख्या इतनी अधिक बढ़ गई है कि वे कई बार यह नहीं सोच पाते कि क्या करना उचित होगा। आज ग्रामीण क्षेत्रों में प्राथमिक पाठशालाएँ राजनैतिक विवादों के अखाड़े बन गई है। इससे शिक्षकों में निराशी बढी है तथा उनके उत्साह व निष्ठा में कमी आने के फलस्वरूप शैक्षिक स्तरों में गिरावट आई है।

3. राज्य सरकार द्वारा चलाई गई नगरों व कस्बों की पाठशालाओं में कार्य कर रहे शिक्षकों को पंचायतों के अधीन कार्य कर रहे शिक्षकों की तुलना में, सेवा सम्बन्धी अधिक सुरक्षा व उत्तम सुविधाएँ प्राप्त हैं जिससे शिक्षकों में कडवाहट का होना स्वाभाविक ही है।

4. पंचायत समितियों व पंचायत के अधिकारी, पंच आदि अधिकतर अर्द्धशिक्षित व अशिक्षित होते हैं तथा प्रजातान्त्रीय दृष्टिकोण से प्रशासन नहीं करते।

यह सर्वविदित ही है कि उनमें से कई शिक्षकों को अपने हाली, नाई, चपरासी या व्यक्तिगत नौकर की भाँति अपने से बहुत छोटा समझते हैं। ऐसे कुछ उदाहरण देखने में आये हैं कि जिनमें पंचायत समिति के प्रधानों व ग्राम पंचायतों के सरपंचों ने शिक्षको से अपने बनियान, जाँधिये तक सुखाने, मुफ्त में अपने बच्चों को घर पर पढ़वाने तथा राजनैतिक प्रचार में भाग लेने को बाध्य किया है, जिससे शिक्षक बहुत क्षुब्ध रहे हैं।

शैक्षिक स्तर को ऊँचा करने का उपाय

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि शैक्षिक स्तर में गिरावट के लिए विद्यार्थी, शिक्षक, समुदाय, संसाधन–व्यवस्था, शिक्षालय व्यवस्था, पाठ्यचर्या

Scanned by CamScanner

शिक्षण परीक्षा, सामाजिक जीवन, अभिभावक आदि तत्व उत्तरदायी है। उपर्युक्त अवरोधों को पार करके शिक्षा प्रदान प्राप्त की जा सकती है। जैसे पत्राचार, शिक्षा, मुक्त शिक्षा।[10] किसी एक तत्व को जिम्मेदार ठहराना वास्तविकता में पलायन का प्रतीक है। हम शैक्षिक स्तरों के उन्नयन के लिए अनेक दीर्घकालिक उपाय अपना सकते हैं परन्तु इन प्रयासों की सफलता हमारी निष्ठापूर्वक कार्य करने की प्रवृत्ति, धैर्य व सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन कर निर्भर होगी। कुछ सुझावों इस प्रकार है –

1. पाठ्यपुस्तकों को रटकर सीखने के बजाय शिक्षण से सम्बन्धित नई नीतियों जैसे–प्रत्यय अर्जन, प्रत्यय निर्माण, अग्रिम संपादक, साधिकार अधिगम, संगणक की सहायता से अधिगम, 'इन्क्वायरी' कक्षा मिलन आदि का प्रयोग होना चाहिए। इसके लिए शिक्षकों को पुनः प्रशिक्षण प्राप्त करना होगा। नई शिक्षा नीति के क्रियान्वयन के दौरान जिला स्तर पर शिक्षकों के लिए अनेक कार्यशालाऐं आयोजित की गई परन्तु उनकी व्यावहारिक उपयोगिता संदिग्ध है। इस सेवाकालीन प्रशिक्षण का दायित्व राष्ट्रीय स्तर की श्रेष्ठ शिक्षक–प्रशिक्षण संस्थाओं को सौंपा जा सकता है। शिक्षा की नयी नीति से विदित होता है कि शिक्षा प्रशासन का कार्य अब खानापूर्ती का नहीं रह गया है।[11]

2. शिक्षा के मूल्य से अनभिज्ञ व अनावश्यक समाज में शिक्षक से उच्च कोटि के प्रदर्शन की मांग नहीं की जा सकती। हमें इस बात की अनुमति नहीं देनी चाहिए कि शिक्षक पर्यवेक्षण व मूल्यांकन प्रक्रिया से सम्बन्धित दोशगिनाकर जिम्मेदारी से लगभग पूरी तरह मुक्ति प्राप्त कर लें। यदि हम क्षेत्रीय स्तर पर 'मंडलीय शिक्षा समितियों' गठित करें तथा उन्हें शिक्षको के कार्य का आचानक मूल्यांकन व विश्लेषण करने का अधिकार दे दे तो शिक्षकों को काफी नियमित व कर्त्तव्यनिष्ठ रह कर पढ़ाना होगा। संभव है ऐसी स्थिति में शिक्षण को अंशकालिक कार्य मानने की उनकी अभिवृत्तियाँ ठीक हो जाए।

3. शिक्षा संस्थाओं का अराजनीतिकरण होना चाहिए। विद्यार्थियों, शिक्षकों, प्रबंधकों, व कर्मचारियों को बहस करने, अपनी समस्याएं उठाने व उनके हल हेतु प्रयास करने से रेकना अनुचित होगा परन्तु राजनीतिक प्रेरित आदोलनों में भाग लेने पर पाबंदी लगाना श्रेयस्कर होगा। राजनीतिक लों के विद्यार्थी कैडर समाप्त रकना आवश्यक है। हमें शिक्षकों के लिए योग्यता के आधार पर पदोन्नति करने की योजना में निहित सिद्धान्तों को सही ढंग से लागू करना होगा ताकि शोधकर्ताओं व शिक्षकों के रूप में संदिग्ध क्षमता वाले व्यक्तियों का भविष्य अंधकारमय हो जाए।

4. माध्यमिक स्तर पर शिक्षा का व्यवसायीकरण होना चाहिए। हमें 'मानव–शक्ति–नियोजन' प्रणाली की कमियाँ दूर करनी चाहिए तथा इसकी संभावनाओं को व्यवसायिक कार्यक्रमों की विषयवस्तु से सम्बद्ध करना चाहिए ताकि विद्यार्थी उपयुक्त व्यवसाय हेतु तैयार हो सकें।

5. विभिन्न माध्यमों से दूर बैठे शिक्षा प्राप्त करने की पद्धति शिक्षा–शास्त्र की एक विरल प्रणाली के रूप में उभरी है। शिक्षा के कार्यक्रमों का प्रभाव मुख्यतः दूरदर्शन, रेडियो, टेपरिकार्डर, वीडियो–कैसेट प्लेयर, आदि की उपलब्धता पर निर्भर है। एक ओर तो समुदाय या सरकार को इन उपकरणों को खरीदने के लिए धन देना होगा। संगत ज्ञान देने व मन में उचित रूप से उस ज्ञान को स्थापित करने के लिए उपयुक्त प्रकार के साफ्टवेयर का विकास करना जरूरी है।

6. संविधान के अनुसार शिक्षा का विषय अब समवर्ती सूची में शामिल है। इससे पूरे देश में शिक्षा की वृद्धि, विस्तार तथा उसे स्तर में सुधार लाने की सारी जिम्मेदारी तथा योजना बनाने का भार केन्द्रीय सरकार के ऊपर आ गया है। सरकार को प्रत्येक शिक्षा संस्था का पंजीकरण अनिवार्य बनाना चाहिए व उसकी गुणवता, उसके स्वरूप उसमें शिक्षा पर व्यय, उसके पाठ्यक्रम पर नियन्त्रण रखना चाहिए। इस संदर्भ में हलीम मुस्लिम डिग्री कॉलेज, कानपुर द्वारा दायर रिट याचिका पर उच्च न्यायालय ने अपने एक निर्णय में कहा है कि विश्वविद्यालय के कुलाधिपति को सम्बद्ध डिग्री कालेजों की प्रबंध समिति द्वारा लिए गए निर्णय में सीघे हस्तक्षेप का अधिकार नहीं है, फिर भी यदि इन कॉलेजों के सम्बन्ध में विश्वविद्यालय के कुलपति या अन्य अधिकारी ने कोई निर्णय कानूनी प्राविधानों के खिलाफ लिया है, तो कुलाधिपति को हस्तक्षेप करने का अधिकार है। यह हस्तक्षेप अल्पसंख्याकें द्वारा चलाये जा रहे डिग्री कालेजों के सम्बन्ध में भी किया जा सकता है। निर्णय में हा गया है कि अल्पसंख्याकों द्वारा संचालित शिक्षण संस्थाओं को ऐसे अबाध अधिकार नहीं दिये जा सकते जिससे शिक्षा स्तर में गिरावट आए, वहाँ गडबडी व मनमानी पनपे जो अंततः संस्था के हितों के प्रतिकूल हो।

7. जिला स्तर पर शिक्षा केन्द्रों की स्थापना करने के प्रयास स्वागत योग्य हैं। जिला स्तर पर

Scanned by CamScanner

शिक्षा योजना बनाने, प्रशिक्षण की व्यवस्था करने, शैक्षिक पर्यवेक्षण करने तथा विभिन्न शिक्षा संस्थाओं के शैक्षिक स्तर सुधारने का दायित्व इन केन्द्रों को सौंपा जाना चाहिए। इनमें केवल शिक्षाशास्त्र में स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त लोगों की नियुक्ति होनी चाहिए।

8. शिक्षा की चुनौती–नीति सम्बन्ध परिप्रेक्ष्य' नामक दस्तावेज के अनुसार शिक्षा के लक्ष्यों को तब तक पाप्त नहीं किया जा सकता जब तक कि शिक्षा प्रणाली में गुणात्मक परिवर्तन नहीं लाया जाता। काफी हद तक ये परिवर्तन व्यावहारिक तथा संकल्पनात्मक होने के साथ–साथ शिक्षा की व्यवस्था ओर संगठन में भी सुधार लाने वाले होंगे। फिर भी, यह स्वीकार करना पड़ेगा कि तब तक शिक्षा संस्थाओं में – भवन, ब्लैकबोर्ड, चार्ट और पोस्टर, पीने के पानी आदि की सुविधांए, प्रयोगशालाऐं, विज्ञान सामग्री और पुस्तकालय, सामाजिक रूप से उपयोगी उत्पादक कार्य, प्रति अध्ययनों, खेलकूद तथा सांस्तिक कार्यकलापों में आयोजित करने पर होने वाले फुटकर व्यय के लिए पैसे की व्यवस्था नहीं कर दी जाती, तब तक कोई लाभदायक परिणाम नहीं निकल सकते। इन सुविधाओं के लिए पूरे खर्च का भार राज्य व केन्द्र सरकारों को उठाना चाहिए। शिक्षा के साधन सम्बन्धी समस्या का अध्ययन करने व इसके हल हेतु दीर्घकालिक आधार पर उपाय खोजने के लिए केन्द्र व राज्यों के एक उच्च स्तरीय संयुक्त आयोग का गठन होना चाहिए।

9. उच्च शिक्षा देकर नौकरी के अयोग्य लोगों को बड़ी संख्या में तैयार करने में सीमित साधनों के फिजूलखर्च को रोकने की जरूरत है। केवल उन लोगों को ही उच्च शिक्षा मिलनी चाहिए जिनमें अध्ययन की प्रवृति हो। स्नातकोतर स्तर पर औपचारिक शिक्षा में केवल उन्हीं को प्रोत्साहित करना चाहिए जिनका शैक्षिक रिकार्ड अच्छा हो। उच्च शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर विशेष परीक्षण लेकर प्रवेश करने की नीति उत्तम है। कोठारी आयोजग का सुझाव था कि प्रत्येक संस्था में विद्यमान सुविधाओं का वहां कार्यरत शिक्षकों की दृष्टि से संस्था की प्रवेश क्षमता का निर्धारण करना चाहिए, विश्वविद्यालय को विद्यार्थियों की अपेक्षित योग्यताओं का निर्धारण करना चाहिए तथा पेशार्थियों में से सर्वोतम का चयन करना चाहिए। प्रवेश सम्बन्धी विविध कार्यों के संचालन के लिए प्रत्येक विश्वविद्यालय में प्रवेश समिति हानी चाहिए तथा उच्च शिक्षा के विविध पाठयक्रमों मे प्रवेश के लिए पात्रता व उपयुक्त चुनाव पद्धतियों का विकास करने के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को परीक्षण यूनिट की स्थापना करनी चाहिए। वंचित वर्गों, गरीबों, ग्रामीण क्षेत्रों के बच्चों को प्रतिकूल परिस्थितियों में अध्ययन करना पड़ता है। अतः इनके लिए कुछ छूट, जैसे–प्रवेश परीक्षा में मिले प्राप्तांकों में उनका दस प्रतिशत जोड़ना, आदि अवश्य मिलनी चाहिए।[12]

संदर्भ पुस्तक एवं ग्रन्थ

1. भारत में शिक्षा व्यवस्था का विकास, रामशकल पाण्डेय, 2007, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
2. शिक्षा मनोविज्ञान, डॉ आबिदा परवीन, 2008, आस्था प्रकाशन, जयपुर
3. बाल केन्द्रित शिक्षा एवं शैक्षिक प्रोद्योगिकी, संजय दत्ता, के.पी. अग्निहोत्री, 2005/06, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
4. शिक्षा में निर्देशन एवं परामर्श, डॉ. राधारानी सक्सेना, श्रीमती इंदिरा रानी, 2014, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर।
5. शिक्षा मनोविज्ञान, डॉ. शालिग्राम त्रिपाठी, 2006, कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, दरियागंज।
6. भारतीय शिक्षा की समसामयिक समस्याएँ, डॉ0 रामशकल पाण्डेय एवं करूणाशंकर मिश्र, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा–2 ।
7. भारतीय शिक्षा का समाजशास्त्र, डॉ सत्यपाल रूहेला, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
8. स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा में आधुनिक प्रवृतियों, डॉ. एन.पी. शर्मा, 2009, खेल साहित्य केन्द्र, दरियागंज, नई दिल्ली।
9. दुरवर्ती शिक्षा, डॉ सियाराम यादव, 2007/08 "अग्रवाल पब्लिकेशन्स आगरा – 7।
10. शिक्षा प्रशासन, डॉ उमेशचन्द्र कुदेसिया, 2008, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
11. शिक्षा की दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि, डॉ0 रामशकल पाण्डेय, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा–2।
12. शिक्षा तकनीकी, एस.एन.बक्शी, 2014, प्रेरणा प्रकाशन, रोहिणी, दिल्ली।

Scanned by CamScanner